Indian J. Soc. & Pol. 11 (02):65-70:2024 **ISSN: 2348-0084 (PRINT)**
February-June 2023 (31 July 2024) **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

श्री अरविन्द एवम् एरिक फ्रॉम का मानववाद : एक तुलनात्मक अध्ययन

नागेन्द्र नाथ मिश्रा[1]

[1]प्रवक्ता, राजनीतिशास्त्र, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ ,जौनपुर,उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

मानवतावादी चिन्तकों के मानवतावाद सम्बन्धी विचारों जिसमें एक वह जिसकी गणना अध्यात्मवादी, योगी और आत्मद्रष्टा के रूप में प्रमुखता से की जाती है और दूसरा वह जो सामाजिक आलोचक और मनोविज्ञानवेत्ता के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु दोनों मानव की मानवता में विश्वास करते हैं। एक का मानवतावाद अध्यात्म पर आधारित है तो दूसरे का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है। श्री अरविन्द का मानवतावाद धर्म पर आधारित है तो एरिक फ्रॉम का सामाजिक दर्शन पर। 20वीं शताब्दी के इन दोनों मानवतावादी चिन्तकों का तुलनात्मक अध्ययन इनके लेखों पर प्रमुख रूप से आधारित है। श्री अरविन्द का लेख 'मानवता का धर्म', 'मानव एकता का आदर्श' नामक उनके ग्रन्थ का 34वाँ अध्याय है और एरिक फ्रॉम का लेख 'ए ग्लोबल फिलोसोफी ऑफ मैन'–जुलाई–अगस्त, 1966ई0 की 'दी ह्यूमनिस्ट' यू0एस0ए0 पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

KEYWORDS: *मानवतावाद,श्री अरविन्द, एरिक फ्रॉम,सामाजिक दर्शन, राजनीतिक दर्शन*

भारतीय राजनैतिक दार्शनिक चिन्तकों में श्री अरविन्द(1872–1950) का स्थान विकासवादी चिन्तकों में आता है। इनकी विशेषता यह है कि जहाँ कुछ चिन्तक सामान्यतः केवल व्यक्ति के विकास पर ही बल देते हैं, वहीं श्री अरविन्द व्यक्ति के साथ समष्टि विकास का भी समर्थन करते हैं। यहाँ समष्टि विकास का अर्थ श्री अरविन्द की दृष्टि में वैश्विक विकास से है। समष्टि के विकास का अर्थ व्यक्ति के विकास के साथ समस्त जड़–तत्त्व, जीवन, आत्मा और मन का विकास है। श्री अरविन्द का चिन्तन आध्यात्मिक व दार्शनिक है। हम उनके विकासवादी चिन्तन का आध्यात्मिक–दार्शनिक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। अरविन्द चिन्तन के व्याख्याता एम0के0 मैत्र ने ठीक कहा है कि 'श्री अरविन्द का सम्पूर्ण चिन्तन दो नकारों के बीच से ही निकलने का एक उपक्रम है। अब तक एक को सत्य तथा दूसरे को असत्य मानने की धुन में एकांगी विचार व्यक्त किया गया है। किन्तु ''श्री अरविन्द का सम्पूर्ण चिन्तन–दर्शन इस मूलभूत विचार पर आधारित है कि जड़तत्व और परमात्मतत्व दोनों सत्य हैं''।

अध्यात्मवादी दर्शन जो भूतत्व को पूर्णतया अस्वीकार करता है वह उसी प्रकार एकांगी है जिस प्रकार भौतिकवादी दर्शन, जो आत्मा को पूर्णतया अस्वीकार करता है। अतः जिन दो अतियों से दर्शन को बचना चाहिए वे हैं–आत्मा की उपेक्षा करने वाला भौतिकवाद और भूततत्व की उपेक्षा करने वाला अध्यात्मवाद। इसी कारण श्री अरविन्द घोषित करते हैं कि इस पृथ्वी पर दिव्य जीवन के आविर्भाव के लिए तथा मर्त्यलोक में अमृतत्व की भावना के लिए तब तक कोई आधार नहीं हो सकता जब तक कि हम केवल इतना ही मानते रहें कि इस देह–प्रसाद में वास करने वाला, इस नश्वर वस्त्र को धारण करने वाला, अविनाशी परमात्मा है, हमें यह भी मानना होगा कि जिस भौतिक तत्व से यह निर्मित है वह एक ऐसा श्रेष्ठ और उपयुक्त पदार्थ है जिसमें से वह निरन्तर अपने वसन बुनता रहता है, पुनः–पुनः अपने महल बनाता रहता है।(श्री अरविन्द, पृ08)

अस्तु हमें अपने प्राचीन पूर्वजों के साथ यह कहना चाहिए कि ''जड़तत्व भी ब्रह्म है'' (अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्) श्री अरविन्द बतलाते हैं कि भूततत्व को आत्मा से पृथक करने का अनिवार्य परिणाम दो के बीच में एक के चुनाव की विवशता है। ''जीवन की एक महान दरिद्रता' या 'आत्मतत्व–सम्बन्धी विशयों में वैसी ही दरिद्रता''। अर्थात् यदि हम केवल तत्व को स्वीकार करते हैं तो उस स्थिति में आत्मा के बिना जीवन–विकास की सारी संभावनाओं और श्री को खो देना है तथा यदि हम केवल आत्मा को स्वीकार करते हैं तो उस स्थिति में भूततत्व दोनों में से किसी एक का भी निशेध दर्शन–जगत को अभीष्ट नहीं होना चाहिए।(मैत्रे, पृ01–2) मूल रूप से भी अरविन्द के दर्शन की यही अवधारणा है और इसी के आधार पर अपने सभी ग्रन्थों में इसी चिन्तन और दर्शन का प्रस्फुटन किया है। कहना न होगा कि श्री अरविन्द दर्शन का विपुल साहित्य, दर्शन जगत के बीच देखा जा सकता है। 'मानवतावाद' आधुनिक जीवन का एक बहुचर्चित और आकर्षक पद है। धर्म और मानव के हित चिन्तक इस विशय पर अपने–अपने विचार व्यक्त करते रहे हैं। श्री अरविन्द इस अति आधुनिक अवधारणा से अछूते नहीं रह सके हैं। उन्होंने मानवतावाद के दो रूपों– ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी या भौतिकवादी तथा अध्यात्मवादी में से अपने सिद्धान्त के अनुरूप ही इस विषय पर विचार किया है।

अनीश्वरवादी एकांगी रूप में केवल यह मानते हैं कि मानवतावाद वह मत है जो मनुष्य तथा मनुष्य की महत्ता और उसके गुणों में अर्थात् मानवता में आस्था और विश्वास करता है।

1: Corresponding Author

मानवतावाद जीवित मानवता से प्रेम है। मानवतावाद का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। यह मनुष्य के अस्तित्व उसकी स्वतन्त्रता तथा उसके कल्याण का पक्षपाती है। मानवतावद विश्वबन्धुत्व, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और मनुष्य के भ्रातृत्व का समर्थक है।

यहाँ जिन दो दार्शनिकों के मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना है, उनमें दोनों का लक्ष्य तो एक ही है– मानवतावाद की मीमांसा या विवेचना, किन्तु फिर भी भिन्नता है यह उनके विचारों को प्रस्तुत करने के बाद ही ज्ञात हो सकता है।

एरिक फ्रॉम (मार्च 23, 1900–18 मार्च 1980) जर्मनी के एक समाज मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेशणवादी और मानवतावादी दार्शनिक के रूप प्रसिद्ध हैं। इनके ऊपर स्पिनोजा जैसे अद्वैतवादी दार्शनिक का प्रभाव है तो एरवार्ट जैसे रहस्यवादी का भी प्रभाव है। दूसरी ओर किर्केगार्ड जैसे अस्तित्वादी दार्शनिक का प्रभाव है तो भौतिकवादी मार्क्स का भी प्रभाव है। मनोविश्लेशणवादी होने के नाते एरिक फ्राम फ्रायड से बिना प्रभावित हुए नहीं रहे। समाजशास्त्री चिन्तक होने के कारण इनके ऊपर समाजशास्त्री मेक्स वेबर के भाई अल्फ्रेड वेबर का प्रभाव है। एरिक फ्रॉम की रचनाओं से यही ज्ञात होता है कि (इनकी रचनाएं जो संख्या में लगभग पच्चसी है) एरिक फ्रॉम विश्व की वर्तमान स्थिति के एक प्रसिद्ध सामाजिक आलोचकों में से हैं। सामाजिक स्थिति के विवेचनकर्ताओं में जिस प्रकार राबर्ट निस्बत और हार्बर्ट मारकूजे आदि की गिनती है उसी प्रकार एरिक फ्रॉम की भी एक उच्च कोटि के सामाजिक विचारकों में गणना की जाती है। ''फ्रॉम को कभी मार्क्सवादी–मानवतावादी माना जाता है और कभी नव–फ्रायडवादी परन्तु जिन अर्थों में इन शब्दों को काम में लाया जाता है। उनमें वह न तो एक समाजशास्त्री हैं और न एक मनोविज्ञानवेत्ता। आधुनिक सभ्यता का एक तीखा आलोचक, फ्रॉम प्रमुखतः एक चिकित्सक के रूप में हमारे सामने आते हैं, एक ऐसे चिकित्सक के रूप में जो व्यक्ति के समान ही समाज के रोग के कारणों का पता लगाना चाहते हैं, और उसे स्वास्थ्य लाभ के उपाय सुझाते हैं। मार्क्स से अधिक फ्रायड से प्रभावित फ्रॉम ने अपनी सामाजिक आलोचना में उसी पद्धति को अपनाया है जिसे मनोविज्ञानवेत्ता व्यक्तिगत रोगों के उपचार में काम में लाते हैं। व्यक्ति की वर्तमान अक्षमता का कारण उनकी दृष्टि में समाज का प्राचीन इतहास है और इस कारण, इस समस्या का उन्मूलन करने की दृष्टि से वह समाज के चिन्तन के स्वरुप को ही बदल डालना चाहते हैं। 1941 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'स्केप फ्रॉम फ्रीडम'** में उन्होंने आधुनिकीकरण को आज के विश्व की राजनीतिक और सामाजिक बीमारियों का एकमात्र कारण बताया है। इसी प्रकार आधुनिक समाज में उत्पन्न मानव में बुराईयाँ आयीं। इन बुराईयों का कारण और कुछ नहीं औद्योगिक समाज की जटिलताएं हैं और राज्य की बढ़ती हुई तानाशाही भी है। किन्तु ''एरिक फ्रॉम को मानवीय प्रकृति की मूलभूत अच्छाई में पूरा विश्वास है, परन्तु वह यह मानते हैं कि आज की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में उसे बराबर कुचला जा रहा है। मनुष्य की स्वाभाविक अच्छाई मुक्त होने का प्रयत्न करती है, मनुष्य उत्पादन और निर्माण का एक ऐसा जीवन बिताना चाहता है जिसमें उसका स्वयं का विकास हो सके और जो समाज के लिए भी लाभकारी हो, परन्तु समाज के भारी बोझ के नीचे वह बराबर पिसता चला जाता है। मनुष्य के स्वभाव से ही समाज में रहना चाहता है, परन्तु समाज के साथ वह प्रेम का सम्बन्ध चाहता है न कि उसके अधीन हो जाने का, अथवा उस पर आधिपत्य स्थापित करने का। अन्य मनुष्यों के लिए उसके मन में प्रेम है, और बदले में यदि अन्य मनुष्यों से भी उसे 'प्रेम' ही प्राप्त होता है, तो उसे लगता है कि समाज में उसकी अपनी जड़ें गहरी चली गयी हैं, परन्तु यदि वह समाज में इस प्रकार का सम्बन्ध अनुभव करने की स्थिति में अपने को नहीं पाता तो उसमें विच्छिन्नता की भावना आ जाती है। अपनी पुस्तक **'दी सेन सोसाइटी' (1955)** में एरिक फ्रॉम ने स्वस्थ समाज में स्वस्थ व्यक्ति के होने की कल्पना की है और ऐसा स्वस्थ व्यक्ति 'सृजन' निष्पक्षता के साथ स्वीकार करने के काम में लगा रहता है। वह अपने आप को एक विशिष्ट वैयक्तिक इकाई मानता है और साथ ही अपने को अपने साथियों के साथ भी सम्बद्ध पाता है, वह व्यक्ति विवेकहीन अधिकार के सामने झुकता नहीं है और अन्तरात्मा और विवेक के प्रभुत्व को सहर्श स्वीकार कर लेता है।'' इस प्रकार के स्वस्थ व्यक्ति ही मिलकर एक स्वस्थ समाज का निर्माण करते हैं। एक स्वस्थ समाज की व्याख्या करते हुए फ्रॉम कहते हैं कि वह समाज ऐसा है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक लक्ष्य माना जाता है। जिसमें किसी भी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति के लोभ, दबाव अथवा शोशण का साधन नहीं बनाया जा सकता। फ्रॉम की मान्यता है कि एक स्वस्थ समाज वह समाज है जिसमें केन्द्र व्यक्ति है और जिसमें सभी राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियाँ केवल उसी की वृद्धि और विकास के लिए की जाती है। इस प्रकार का समाज ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुचलने और उसमें विच्छिन्नता की भावना का निर्माण करने के स्थान पर सृजनशीलता को उभारने, विवेक को बढ़ावा देने और एक–दूसरे के प्रति प्रेम और आदर की भावना विकसित करने के लिए पर्याप्त वातावरण का निर्माण कर सकेगा। (वर्मा,1990)

एरिक फ्रॉम के मानववादी दर्शन की इसी पृष्ठभूमि में उनके **''ग्लोबल फिलोसोफी ऑफ मैन''** (सार्वभौम मानव दर्शन) नामक लेख की विवेचना और श्री अरविन्द के मानवता का धर्म लेख के साथ उसकी तुलना इस अध्ययन का आकर्शक विशय होगा।

अपने उपर्युक्त लेख का प्रारम्भ एरिक फ्रॉम यह कहते हुए करते हैं कि इस दशक के असाधारण परिवर्तन में विशेष रूप से यूरोप, यूनाइटेट स्टेट्स और लैटिन अमेरिका में मानवतावाद का पुनर्जागरण है। उसकी दृष्टि में मानवतावाद और पुनर्जागरण के बीच सम्बन्ध प्रायः एक समान है। पुनर्जागरण के अर्थ में मानवतावाद के अर्थ को सम्मिलित किया जाता है। एरिक फ्रॉम की अवधारणा को लेते हुए किसी ने यह ठीक ही लिखा है कि पुनर्जागरण का अर्थ वस्तुतः एक नए जगत में एक नया मानव है। एरिक फ्रॉम के अनुसार प्रायः लोगों द्वारा मानवतावाद और पुनर्जागरण के बीच जो सम्बन्ध बताया जाता है उसमें उनका (फ्रॉम का) मतभेद है। एरिक फ्रॉम

मानवतावाद को पुनर्जागरण काल का उत्पाद नहीं मानते। उन्होंने मानवतावाद की परिभाशा ''सार्वभौम मानव दर्शन'' (Global Philosophy of Man) के रूप में की है। यह दर्शन निश्चित रूप से पुनर्जागरण काल में अपनी ऊँचाईयों पर पहुँचा किन्तु इसकी परम्परा 2500 वर्श पुरानी है, जिसका प्रारम्भ पैगम्बरों के जमाने से है– जैसे पश्चिम में पैगम्बर के उपदेशों में देख सकते हैं और पूरब में बौद्धों के उपदेशों में पाते हैं।

एरिक फ्रॉम ने अपने लेख में इस मानवतावादी दर्शन के विचार को संस्कृति के विभिन्न कालों में देखने का उपक्रम किया है। प्रथम बौद्ध मानवतावादी दृष्टि–जीवको आज के अस्तित्वादी दर्शन में देख सकते हैं। मानवतावाद की दूसरी शाखा प्राचीन नियम (Old Testament) के इसाह (19–23–25) में देख सकते हैं। जैसे 'अपने पड़ोसी से प्रेम करो' या 'अनजाने व्यक्ति से प्रेम करो' जैसे उपदेशों में मानवतावाद की झलक पाते हैं।

तीसरा नए नियमों– ईसाई विचारधारा में पाते हैं, जिसमें यहाँ तक कहा गया है कि 'अपने शत्रु से प्रेम करो।' निकोलस जो पुनर्जागरण काल का धर्म विज्ञानी था, का कथन है कि क्राइस्ट का मानवतावाद मानव मात्र को एकता के सूत्र में बाँधता है। इस धर्म में मानव जाति को आन्तरिक रूप से बाँधने का उपदेश दिया गया है। इसी तरह ग्रीक मानवतावाद को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

एक महान लैटिन मानवतावादी सिसरो ने मानवतावाद के विषय में लिखा है कि इस पूरे ब्रह्माण्ड को एक कामनवेल्थ के रूप में मानना चाहिए, जिसमें देवता और मनुष्य सभी इसके सदस्य के रूप में हैं।'' यह मानवतावाद की दृष्टि से अनोखी अवधारणा है।

कुछ महान नाम जो पुनर्जागरण काल के मानवतावाद से जुड़े हुए हैं, वह हैं– पीको डेला मिरान्डोला (PICCO DELLA MIRANDOLA) पोस्टेल (POSTEL) तथा बहुत दूसरे नाम–जो मानवतावाद को आगे ले गए। इन चिन्तकों में मानवतावाद को नए मानवातावादी विचारों की ओर ले गए। इनके प्रयास से मानवतावाद में तर्क तथा शान्ति को महत्व दिया गया। इन लोगों ने मनुष्य की अन्तःशक्तियों को पहचानने पर जोर दिया। इस प्रकार एक नए प्रकार के मानवतावाद की ओर अग्रसर हुए। इन विचारकों ने कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट की अबौद्धिकता तथा धर्मान्धता को पहचान कर इन्हें रोकने का प्रयास किया।

आगे एरिक फ्रॉम ने अपने लेख में ज्ञानोदय काल के दार्शनिकों का हवाला देते हुए मानवतावाद के उत्थान की चर्चा की है। सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक कुछ प्रबुद्ध विचारकों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए कुछ प्रसिद्ध नाम हैं– स्पिनोजा, लॉक, फ्रायड तथा मार्क्स आदि। किन्तु यूरोपियन मानवातावदी गेटे (1814) की मानवतावादी दृष्टि को उद्धृत करते हुए कहा है कि गेटे ने लिखा है कि ''जर्मन राष्ट्र कुछ नहीं किन्तु व्यक्ति (जर्मन) कुछ है।'' गेटे आगे कहते हैं–मनुष्य अपने भीतर केवल अपने व्यक्तित्व को ग्रहण नहीं करता वरन उसके भीतर सम्पूर्ण मानवतावाद अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ उपस्थित रहता है। फ्रायड जिनका नाम भी मानवतावादी विचारकों में गिना जाता है, गेटे के सिद्धान्त को अपने मनोविश्लेशण के सिद्धान्त में व्यावहारिक रूप देते हैं।

एरिक फ्रॉम ने अन्त में गत शताब्दी के महान मानवतावादी दार्शनिक मार्क्स (18818–1883) का उल्लेख किया है। मार्क्स ने गेटे से अपने विचारों को सम्बद्ध करते हुए लिखा है कि एक व्यक्ति अपने को स्वतन्त्र मनुष्य तब तक नहीं समझ सकता जब तक कि वह अपना स्वामी स्वतः नहीं होता। वह अपना स्वामी तभी हो सकता है जब उसका अस्तित्व स्वयं अपने से हो।

विभिन्नता एवं सामान्य पृष्ठभूमि :

एरिक फ्रॉम जिस मानवतावाद का उल्लेख कर रहे हैं उसके उत्पन्न होने के सामान्य कारणों में एक कारण यह है कि मनुष्य जीवन को या उसके अस्तित्व को जब खतरों और धमकियों का सामना करना पड़ा तब मानवतावाद एक विचार के रूप में सामने आया। इन खतरों या धमकियों में प्रथम है–आणुविक युद्ध का खतरा, दूसरा है– औद्योगिक समाज में मनुष्य के आध्यात्मिक अस्तित्व के लिए खतरा। इस समाज में मनुष्य एक वस्तु बनकर रह जाता है। मनुष्य में अलगाव (ALIENATION) की भावना पनपती है। वह अपने को समाज और स्वयं अपने से कटा हुआ अनुभव करता है।

यद्यपि मानवतावाद के तीन प्रकार–कैथोलिक मानवतावाद, प्रोटेस्टेन्ट मानवतावाद और मार्क्सवादी मानवतावाद हैं, फिर भी इन तीनों में समानता है। प्रथम यह है कि इन सभी में एक ही मानव तत्व वर्तमान है। दूसरा सामान्य तत्व इस नव मानववाद के बीच है। मनुष्य को केवल भौतिक रूप से ही नहीं बचाना है वरन् उसे आध्यात्मिक मृत्यु से भी बचाना है, जिस मानवता को औद्योगिक समाज में खतरा था। एक समानता की बात यह भी है कि आज के मानवतावाद में शान्ति पर अधिक जोर दिया गया है तथा कट्टरवादिता से बचने का प्रयास किया गया है।

सारांश में विभिन्न समकालीन मानवातावाद के बीच मतभेद होते हुए भी समकालीन मानवतावाद (कैथोलिक और प्रोटैस्टैन्ट) में समान रूप से प्रेम, सहनशीलता तथा शान्ति पर जोर दिया गया है। किन्तु ये सारी समानताएं ईश्वरवादी सन्दर्भ में देखी जा सकती हैं। अर्थात् इन समानताओं के लिए ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु दूसरी ओर सार्त्र के अस्तित्ववादी मानववाद में मनुष्य की पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया है।

मानवीय इच्छाओं में परिष्कार और संवर्धन :

समाजवादी मानवतावाद दो पहलुओं का प्रदर्शन करता है–प्रथम–बिना ईश्वरवादी अवधारणा के मनुष्य की स्वतन्त्रता। इस मानवतावाद को राजनीतिक मानवतावाद की संज्ञा दे सकते हैं। यह आशामूलक है। यह आस्था नहीं दृढ़ विश्वास पर निर्भर है। एक दूसरा पहलू मानवतावाद का वह है, जिसमें पड़ोसी से प्रेम करना बताया गया है। इसमें अहंवाद का खण्डन है। इसमें दूसरों के सुख में

सुखी होने का प्रयास करने के लिए कहा गया है। 'अधिकतम सुख अधिकतम लोगों का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। किन्तु एक कठिन प्रश्न यह होता है कि 'दूसरों के सुख के लिए लड़ना या संघर्श करने का क्या अर्थ है? या फिर सुख क्या है? क्या सुख की आत्मगत परिभाशा वांछित है? क्या यह सुख है कि मनुष्य जो चाहे वह करें? तब तो एक 'मासोकिस्ट' तब प्रसन्न होगा जब दूसरों द्वारा पीड़ित होगा और एक 'सैडिस्ट' तब प्रसन्न होगा जब वह किसी को पीट सकता है– (मारपीट करता है), एक शराबी तक प्रसन्न होगा जब वह शराब पीता है। अर्थात् सुख की कोई वस्तुगत ;व्इरमबजपअमद्ध परिभाशा नहीं हो सकती।

एरिक फ्रॉम के अनुसार यहाँ इस सिद्धान्त पर जोर दिया गया है कि किसी धर्म, सिद्धान्त या मत ;क्वहउंद्ध के बन्धन से दूर होकर अर्थात् मानवतावाद के अनीश्वरवादी मत को स्वीकार करना चाहिए। जो विचार तथा मूल्य हों वह ईश्वर–विश्वास पर निर्भर न हों। इसमें मनुष्य की इच्छा की बाध्यता से नहीं, मानव कल्याण की भावना की बाध्यता काम करनी चाहिए। अर्थात् प्रथम मनुष्य की इच्छा मानववादी परम्परा के आधार पर परिचालित होनी चाहिए। दूसरे मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति सामाजिक कार्यों (अर्थात् जिसमें मानवीय हित की बात हो) के आधार पर हो।

मानवीय मूल्यों की वैधता (Validity)

एरिक फ्रॉम एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी उठाते है कि मानवतावाद किन मूल्यों पर आधारित है या दूसरे शब्दों में मानव जीवन के लक्ष्यों या मानववाद के मूल्यों की वैधता को किस प्रकार स्थापित करें? एरिक फ्रॉम स्वयं जिस आशंका से ग्रस्त हैं वह यह कि पारम्परिक मानवतावाद या धार्मिक मानवतावादी दृष्टि तो ईश्वर, ईश्वरवाणी तथा परम्परा पर आधारित होता है और वही मानवीय मूल्यों का आधार है, जिससे उसकी वैधता निर्धारित होती है किन्तु नवीन मानवतावाद के मूल्यों की वैधता किस पर आधारित है ? यह निश्चित है कि नवीन मानवतावाद ईश्वर को स्वीकार नही करता, यह धार्मिक मूल्यों को भी अपना आधार नही मानता। इसके उत्तर में एरिक फ्रॉम कहते हैं कि मेरा विश्वास है कि मनुष्य के अस्तित्व को दशाओं की परीक्षा के आधार पर यह कार्य संभव है। या फिर इस प्रकार के नवीन मानवतावाद के मूल्य ऐसे व्यक्तियों जैसे स्पिनोजा, गोथे या मार्क्स आदि को आधार बनाकर स्थापित किए जा सकते हैं।

एरिक फ्रॉम ईश्वरवादी भाशा का अनुकरण करते हुए इस नवीन मानवतावाद के मूल्यों की स्थापना के लिए एक सुझाव प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार ऐसे एक व्यक्ति के 'पूर्ण मानव' बनने के लिए 'अपने से परे' जाना होता है। इस 'अपने से परे' (Beyond himself) व्यक्तित्व को ही ईश्वर के रूप में परिभाशित किया जाता है। किन्तु मानवतावाद में ईश्वर की अवधारणा अनावश्यक है।

यद्यपि यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या मनुष्य अपने 'अहं' (Ego) को छोड़ सकता है? क्या मनुष्य अपने को रिक्त कर सकता है? क्या मनुष्य एक रहस्यवादी की भाशा में 'पूर्ण होने के लिए' अपने को रिक्त कर सकता है? क्या वह 'धनी होने के लिए गरीब बन सकता है? यह सभी कथन 'नास्तिक रहस्यवाद' में मिलते हैं, जैसे जैन, बौद्ध धर्म में या इसी तरह कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों में भी यह अवधारणा मिलती है। कोई इन कथनों की व्याख्या यह कहकर कर सकता है कि संसार के साथ एकाकारता है, ऐसी एकाकारता जो ईश्वर पर आधारित नहीं है। किन्तु ईसाई, यहूदी और मुस्लिम रहस्यवादियों के कथनों में ऐसी एककारता के उदाहरण मिलते हैं।

एक समय था जब नीट्शे ने कहा था कि 'ईश्वर मर चुका है' आज भी कुछ प्रोटेस्टेन्ट ऐसा ही कहते हैं। किन्तु एरिक फ्रॉम यह कहते हैं कि आज यह समस्या नहीं है कि ईश्वर मर गया है या नहीं। आज की समस्या है 'कहीं मनुष्य मर तो नहीं गया है?' अब तो मानवतावाद यह चाहता है कि मनुष्य की मृत्यु नहीं होनी चाहिए। यहाँ मृत्यु का अर्थ शारीरिक रूप में नहीं मानसिक या बौद्धिक रूप में मरना है।

सरांश में एरिक फ्रॉम का यही 'सार्वभौमिक मानवदर्शन' है। यही मानवतावाद का पुनर्जागरण है। यह पहले के मानववाद से भिन्न प्रकार का है। इसीलिए इसको मानवतावाद का पुनर्जागरण कहा जाता है। यद्यपि पुनर्जागरण काल की मुख्य विशेषता मानवतावाद का उद्भव तथा विकास है, किन्तु साथ में एरिक फ्रॉम का मानवतावाद का पुनर्जागरण कहना अधिक उपयुक्त है।

मानवतावादी विचारों को विशेष रुप से एरिक फ्रॉम की भाशा में श्री अरविन्द अपने विचार **'मानवता का धर्म'** में व्यक्त करते हैं– ''मानव जाति वह देवत्व है जिसकी मनुष्य को पूजा करनी चाहिए, सेवा करनी चाहिए और यह भी कि मनुष्य और मनुष्य–जीवन का सम्मान उसकी सेवा और उन्नति मानव–भावना का प्रधान कर्तव्य और प्रधान लक्ष्य है। किसी भी प्रतिमा को, न राष्ट्र, न राज्य, न कुटुम्ब और न ही और किसी वस्तु को, इसका स्थान लेना चाहिए। ये केवल वहीं तक सम्मान के पात्र हैं जहाँ तक वे मानव–आत्मा की प्रतिमूर्तियाँ हैं तथा उसकी उपस्थिति की प्रतिष्ठा करती हैं एवं उसकी आत्म–अभिव्यक्ति में सहायता पहुँचती है। पर जहाँ इन प्रतिमाओं की पूजा भावनारूपी आत्मा का स्थान छीन लेना चाहती है और ऐसी माँगे प्रस्तुत करती हैं जो उसकी सेवा के प्रतिकूल है, तो उन्हें एक ओर रख देना चाहिए। पुराने धार्मिक राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक सिद्धान्तों के आदेश जब इसकी मांगों के विपरीत जाते हैं तो वे सच्चे नहीं होते। विज्ञान को भी, यद्यपि वह एक प्रधान आधुनिक प्रतिमा है, यह अनुमति नहीं मिलनी चाहिए कि वह उसके नैतिक स्वभाव और उद्देश्य के विपरीत अपनी मांगे प्रस्तुत करे, क्योंकि विज्ञान केवल उसी हद तक मूल्यवान है जिस हद तक वह ज्ञान और विकास के द्वारा मानवता के धर्म की सहायता करता है, उसकी सेवा करता है। युद्ध, मृत्युदण्ड, हत्या और सब प्रकार की क्रूरता भी किसी भी मनुष्य की या मनुष्यों के वर्ग की अधोगति, चाहे वह किसी भी प्रत्यक्षतः उचित बहाने अथवा हित के लिए हुई हो, मनुष्य का मनुष्य के द्वारा वर्ग या वर्ग के द्वारा और राष्ट्र का राष्ट्र के द्वारा उत्पीड़न

और शोशण एवं जीवन के वे सब अभ्यास और उसी प्रकार की सामाजिक प्रथाएं जिन्हें धर्म और नीतिशास्त्र पहले सहन करते थे... मानवता के विरुद्ध ऐसे अपराध हैं जो उसके नैतिक मन के लिए घृणित हैं और उसके प्रारम्भिक सिद्धान्तों द्वारा वर्जित हैं तथा जिनके विरुद्ध सदा ही युद्ध किया जाना चाहिए, सहन तो उन्हें किसी भी अंश में नहीं करना चाहिए। जाति, वर्ण, धर्म, राष्ट्र, पद और राजनीतिक अथवा सामाजिक प्रगति के सब भेदों को भुलाकर–मनुष्य मनुष्य को पवित्र माने।

श्री अरविन्द जब मानव जीवन की पवित्रता की बात करते हैं, और मानवतावाद के क्षेत्र का निर्धारण करते हैं तो एरिक फ्रॉम का मानवतावाद पीछे छूट जाता है। उदाहरण के लिए श्री अरविन्द के शब्दों में मनुष्य–शरीर का सम्मान करना चाहिए, उसे उग्रता और हिंसा से निरापद रखना चाहिए तथा विज्ञान द्वारा रोग और निवारणीय मृत्यु से उसकी रक्षा करनी चाहिए। मनुष्य के जीवन को पवित्र मानना चाहिए, उसे सुरक्षित, सशक्त, श्रेष्ठ और उन्नत बनाना चाहिए। मनुष्य के हृदय को भी पवित्र मानना चाहिए, अतिचार दमन और यंत्रीकरण से उसकी रक्षा करनी चाहिए। अवनतिकारी प्रभावों से उसे मुक्त करना चाहिए। मनुष्य के मन को सब बन्धनों से मुक्ति दे देनी चाहिए। उसे आत्म–प्रशिक्षण और आत्म–विकास के समस्त साधन उपलब्ध होने चाहिए और मनुष्य जाति की सेवा के लिए उसे अपनी शक्तियों के प्रयोग में व्यवस्थित करना चाहिए। एरिक फ्रॉम की अपेक्षा मानवता के धर्म को श्री अरविन्द केवल सिद्धांत न मन कर व्यावहारिकता पर जोर देते हैं।

मानवता का धर्म तथा पुराणपन्थी धर्म

यहाँ श्री अरविन्द, एरिक फ्रॉम के नवीन मानवतावादी धर्म की भाषा में अपने मानवतावादी धर्म का प्रस्तुतीकरण करते हैं और पुराणपन्थी धर्म की आलोचना करते प्रतीत होते हैं। श्री अरविन्द कहते हैं कि ''यदि हम एक या दो शताब्दी पहले के मानव–जीव, विचार और भावना की युद्ध के पूर्व के मानव–जीवन, विचार और भावना के साथ तुलना करें तो हम देखेंगे कि मानवता के इस धर्म ने कितना अधिक प्रभाव उत्पन्न किया है और कितनी अधिक फलप्रद कार्य किया है। इसने द्रूत वेग से बहुत–से ऐसे कार्यों को सम्पन्न किया है जिन्हें पुराणपंथी धर्म सफलता से नहीं कर सका, इसका अधिकतर कारण यह था कि इसने एक अनवरत बौद्धिक और आलोचक शोधक की भाँति कार्य किया था, यह वर्तमान वस्तु–स्थिति पर निर्दयतापूर्वक प्रहार करता था और भविष्य की वस्तुस्थिति का अविचल नायक था, यह भविष्य के प्रति सदा सच्चा रहता था, जबकि पुराणपंथी धर्म ने वर्तमान समय की शक्तियों के साथ, यहाँ तक कि भूतकाल की शक्तियों के साथ भी मित्रता स्थापित कर ली थी, उसने अपने–आपको उनके साथ संधि द्वारा बांध लिया था और वह सुधारक शक्ति के रूप में नहीं बल्कि अधिक–से–अधिक एक मर्यादाकारी शक्ति के रूप में कार्य कर सकता था। इसके अतिरिक्त यह धर्म (आधुनिक मानवता का धर्म) मनुष्य जाति में और उसके लौकिक भविष्य में विश्वास रखता है और इसलिए उसकी लौकिक उन्नति में सहायता पहुँचा सकता है, जब पुराणपंथी धर्म मनुष्य के लौकिक जीवन को सहन करने तथा जीवन की अपूर्णताओं, क्रूरताओं, अत्याचारों और कष्टों का स्वागत करने की सलाह देने के लिए तैयार रहते थे, ये उनके विचार में उनका मूल्य जानने तथा उस श्रेष्ठतर जीवन को प्राप्त करने के साधन थे, जो उन्हें इसके बाद मिलेगा और मानवता का यह धर्म (नवीन मानवतावादी धर्म) चाहे इसने कोई शारीरिक आकार या प्रबलरूप अथवा आत्म–चरितार्थता के प्रत्यक्ष साधन प्राप्त नहीं किए थे, फिर भी जो कार्य इसने करना आरम्भ किया था उसमें से बहुत कुछ वह सम्पन्न कर सका था। किसी अंश में, इसने समाज को मानवोचित रूप दिया, वैध यन्त्रणा और दास प्रथा के स्थूलतर रूपों को दूर किया, दलितों और पतितों को ऊपर उठाया, मनुष्य जाति को बड़ी–बड़ी आशाएं दिलायीं, परोपकार, उदारता और मानव–सेवा को प्रोत्साहन दिया, सर्वत्र स्वतंत्रता की भावना को बढ़ाया, उत्पीड़न पर रोक लगायी तथा उसके रूपों की क्रूरता को बहुत कम कर दिया। इसे युद्ध को भी मानवीय रूप देने में करीब–करीब सफलता प्राप्त हो गयी थी।'' यहाँ रूक कर एरिक फ्रॉम तथा उनके द्वारा समर्थित मानवतावदी धर्म से आगे जाने वाले श्री अरविन्द के मानवता के धर्म की इस विशेषता की बात करनी है कि जहाँ एरिक फ्रॉम का मानवतावाद विज्ञान को मानवजाति का उद्धारकर्ता मानता है, वहाँ श्री अरविन्द कहते हैं कि ''यदि आधुनिक विज्ञान विपरीत दिशा न ग्रहण करता तो शायद उसे (मानवता का धर्म) पूरी सफलता भी मिल जाती।'' श्री अरविन्द (मानवजाति के लिए) विज्ञान के विनाशकारी रूप की ओर संकेत करते हैं। श्री अरविन्द तो मानवतावादी धर्म की प्रशंसा और इसकी सफलता की चर्चा करते हैं। इसने (मानवता का धर्म) मनुष्य के लिए युद्ध–मुक्त संसार की कल्पना करना संभव बना दिया, उसके लिए सहस्र वर्षों के बाद आने वाले ईसा के युग के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जो भी हो, यह परिवर्तन तो हुआ ही कि, जब कि शान्ति पहले अनवरत् युद्ध की कभी–कभी आने वाली विश्राम की अवस्था थी, अब युद्ध ने शांति की मध्यवर्ती अवस्था का रूप धारण कर लिया, जो बार–बार आने पर भी अभी तक केवल एक सशस्त्र शान्ति की अवस्था थी। इसने ज्ञान का प्रकाश फैलाया, इसने मनुष्य को यह अनुभव कराया कि वह सम्पूर्ण जाति की उन्नति और प्रसन्नता के लिए उत्तरदायी है, इसने मनुष्य जति के औसत आत्मसम्मान और सामर्थ्य को ऊपर उठाया, इसने कृषिदास को आशा दिखाई और दलितों को आत्मनिश्चय का पाठ पढ़ाया और मजदूर को उसके मनुष्यत्व के कारण, गुप्त रूप से धनी और शक्तिशाली का समकक्ष बना दिया।''

नवीन मानवतावाद की असफलता के कारणों में एक प्रमुख कारण मानव (व्यक्ति), वर्ग तथा राष्ट्र का अहंभाव है। यह एक ऐसा कारण है जो मानव व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के बीच प्रेम और एकता को उत्पन्न नहीं कर सकता। मानवता के धर्म की वैधता के लिए एरिक फ्रॉम जहाँ उच्च कोटि के व्यक्तियें या नास्तिक मत वालों के विचारों को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं, वहाँ श्री अरविन्द उसकी आलोचना करते हुए प्रश्न करते हैं कि ''क्या एक विशुद्ध बौद्धिक और

भावनात्मक मानव–धर्म हमारे मनोविज्ञान में इतना बड़ा परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त होगा? बौद्धिक विचार की–चाहे वह भाव और भावनाओं को प्रभावित करके अपने–आप को सशक्त बना ले, दुर्बलता यह है कि वह निम्नतर बाह्य रूप के यंत्र अर्थात् अहंभाव के सेवक अथवा आन्तरिक और उच्चतर मनुष्य अर्थात् आत्मा के यंत्र हो सकते हैं।'' पुनः श्री अरविन्द ऐतिहासिक सर्वेक्षण के आधार पर तर्क प्रस्तुत करते हैं कि ''मानवता के धर्म का लक्ष्य अठारहवीं शताब्दी में एक प्रकार की प्रारम्भिक सहज–प्रेरणा द्वारा सुनिश्चित किया गया था, यह लक्ष्य तब भी यह था और अब भी यही है कि मानव समाज का तीन सजातीय विचारों, स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभावना के रुप में पुनः निर्माण किया जाए। पर जितनी उन्नति की गयी है, उस सब के होते हुए भी इनमें से एक को भी वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं किया गया है। स्वाधीनता, जिसे खूब बढ़–चढ़कर आधुनिक उन्नति का आवश्यक तत्त्व बतलाया जाता है, केवल एक बाह्य, यान्त्रिक और अवास्तविक स्वाधीनता है। श्री अरविन्द ने एरिक फ्रॉम के अनीश्वरवादी मानवतावाद की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मानवतावाद का प्रमुख लक्ष्य स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृभावना ही है। किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति बिना आत्मिक सत्ता या ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किए और उस पर लक्ष्य को आधारित किए संभव नहीं है। इसके लिए श्री अरविन्द का तर्क निम्न रूपों में आगे बढ़ता है– ''यद्यपि अपने क्षेत्र में ये लक्ष्य अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, तथापि ये प्रमुख वस्तु नहीं है, ये केवल तभी सुरक्षित रह सकते हैं, यदि ये यान्त्रिक मानव–प्रकृति और आन्तरिक जीवन–प्रणाली के रूपान्तर पर आधारित हों, अपने–आप में इनका महत्व केवल ऐसे साधनों के रूप में ही है जो इस रूपान्तर की ओर बढ़ने के लिए मनुष्य को एक महत्तर अवकाश तथा श्रेष्ठतर क्षेत्र प्रदान करते है तथा एक बार इसके साधित हो जाने के बाद, विशालतर आन्तरिक जीवन की बाह्म अभिव्यक्ति होते हैं। स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभावना आत्मा की तीन दिव्यताएं हैं, ये वस्तुतः समाज के बाह्य यत्र–विन्यास द्वारा अथवा मनुष्य के द्वारा जब तक कि वह केवल वैयक्तिक और सामाजिक अहंभाव में निवास करता है, चरितार्थ नहीं हो सकते। जब अहंभाव स्वाधीनता की मांग करता है, उसका परिणाम प्रतियोगितापूर्ण व्यक्तिवाद होता है। जब उसका आग्रह समानता पर होता है, तो पहले तो वह संघर्शशील बन उठता है और फिर प्रकृति की विविधताओं से विमुख होने का प्रयत्न करता है और इस कार्य को सफलतापूर्वक करने का एक ही ढंग है कि वह कृत्रिम और यन्त्र–निर्मित समाज की रचना कर लेता है। जो समाज स्वाधीनता को अपना आदर्श मानकर उसे प्राप्त करना चाहता है वह समानता को प्राप्त करने में असमर्थ होता है, और जिसका लक्ष्य समानता है उसे स्वाधीनता का त्याग करना पड़ेगा और अहंभाव के लिए भ्रातृभाव के विशय में कुछ कहने का अर्थ उसकी प्रकृति के विरुद्ध बात करना होगा। जो कुछ वह जानता है वह केवल सर्वसामान्य अहंभावयुक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग है, अधिक–से–अधिक वह समान श्रम–वितरण, उत्पादन, खपत और मनोरंजन के लिए एक दृढ़तर संगठन तक पहुँच सकता है।

किस प्रकार आत्मा और ईश्वर की स्वीकृति मानवतावादी धर्म के लिए आवश्यक है इसके लिए श्री अरविन्द तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं क ''यह सब होते हुए भी भ्रातृभावना ही मानवता के विचार की त्रिविध शिक्षा की वास्तविक कुंजी है। स्वाधीनता और समानता पर आश्रित एकता केवल मानव–बन्धुत्व की शक्ति द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसका आधार और कोई वस्तु नहीं बन सकती। किन्तु भ्रातृभाव का अस्तित्व केवल आत्मा में और आत्मा के द्वारा ही होता है, यह और किसी के सहारे नहीं टिक सकता। कारण, यह भ्रातृभाव भौतिक सम्बन्ध या प्राणिक सहयोग अथवा बौद्धिक समझौते की वस्तु नहीं है। जब आत्मा स्वतंत्रता की मांग करती है, वह स्वतंत्रता उसके आत्म–विकास की अर्थात् मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता में उसके अन्तस्थ भगवान के विकास की स्वतन्त्रता होती है। जब वह समानता चाहता है, तो उसकी मांग यह होती है कि स्वतंत्रता सबको समान रूप से प्राप्त हो तथा समस्त मनुष्यों में उसी एक ही आत्मा को, एक ही भगवान को स्वीकार किया जाये। जब वह भ्रातृभाव के लिए चेष्टा करता है, तो वह आत्म–विकास की समान स्वतंत्रता को एक ऐसे सर्वसामान्य लक्ष्य और जीवन तथा विचार और भाव की एकता पर आधारित करता है जो इस आन्तरिक आध्यात्मिक एकता की स्वीकृति पर आश्रित हो। ये तीन वस्तुएं, वास्तव में, आत्मा के स्वभाव हैं, क्योंकि स्वतंत्रता, समानता और एकता आत्मा के सनातन गुण हैं।

श्री अरविन्द द्वारा एरिक फ्रॉम के मानवतावादी धर्म के विरोध में जो कुछ कहा गया है उसी का समर्थन प्रो0 राधाकृष्णन ने इन शब्दों में किया, ''मानवतावाद धर्म के उन रूपों के प्रति एक उचित विरोध है जो लौकिक एवं पवित्र में भेद करते हैं, काल एवं नित्य का विभाजन कर देते हैं, तथा आत्मा एवं देह के ऐक्य को खण्डित करते हैं। धर्म या तो सब कुछ है या कुछ नहीं। प्रत्येक धर्म को मानव की मर्यादा तथा मानव–व्यक्तित्व के अधिकारों के प्रति पर्याप्त आदर–सम्मान रखना चाहिए। यदि हम धर्म का तिरस्कार करेंगे, उसकी निन्दा करेंगे तो हम उपर्युक्त बातों की रक्षा भी नहीं कर सकते। जैसा कि सुकरात से मिलने आए हुए भारतीय ने कहा था– ''यदि हम ईश्वर के विषय में नहीं जानते तो मनुष्य के विषय में भी कुछ नहीं जान सकते'' जो कुछ सत्यतः मानवीय है उसी की पूर्णता धर्म है। आज मानवतावाद एक आत्मा की खोज में है। (राधाकृष्णन, पृ 39)

REFERENCES

मैत्रे डॉ0 एस0के0 – *अरविन्द दर्शन की भूमिका*

श्री अरविन्द – *लाइफ डिवाइन*

डॉ0 राधाकृष्णन – *सत्य की खोज*

वर्मा,एस0पी0 (1990) – *आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त,* जयपुर, विकास पब्लिशिंग हाऊस, राजस्थान